कहानी

गुलेलबाज़ लड़का

भीष्म साहनी

चित्रकार: मिकी पटेल

छठी कक्षा में पढ़ते समय मेरे तरह-तरह के सहपाठी थे। एक हरबंस नाम का लड़का था जिसके सब काम अनूठे हुआ करते थे। उसे जब सवाल समझ में नहीं आता तो स्याही की दवात उठाकर पी जाता। उसे किसी ने कह रखा था कि काली स्याही पीने से अक्ल तेज़ होती है। मास्टर जी गुस्सा होकर उस पर हाथ उठाते तो बेहद ऊंची आवाज़ में चिल्लाने लगता, "मार डाला! मास्टर जी ने मार डाला!" वह इतनी ज़ोर से चिल्लाता कि आसपास की जमातों के उस्ताद बाहर निकल आते कि क्या हुआ है। मास्टर जी ठिठक कर हाथ नीचा कर लेते। यदि वह उसे पीटने लगते तो हरबंस

सीधा उनसे चिपट जाता और ऊंची-ऊंची आवाज़ में कहने लगता, "अब की माफ कर दो जी! आप बादशाह हो जी! आप अकबर महान हो जी! आप सम्राट अशोक हो जी! आप माई-बाप हो जी, मेरे दादा हो जी, परदादा हो जी!"

क्लास में लड़के हंसने लगते और मास्टर जी झेंपकर उसे पीटना छोड़ देते। ऐसा था वह हरबंस। हर आए दिन बाग में से मेंढक पकड़ लाता और कहता कि हाथ पर मेंढक की चर्बी लगा लें तो मास्टर जी के बेंत का कोई असर नहीं होता, हाथ को पता ही नहीं चलता कि बेंत पड़ा है।

एक दूसरा सहपाठी था – बोधराज। उससे हम सब डरते थे। जब वह चिहुंटी काटता तो लगता जैसे सांप ने डस लिया है। बड़ा ज़ालिम लड़का था। गली की नाली पर जब बर्रे आकर बैठते तो नंगे हाथ से वह बर्रा, पकड़कर उसका डंक निकाल लेता और फिर बर्रे की टांग में धागा बांधकर उसे पतंग की तरह उड़ाने की कोशिश करता। बाग में जाते तो फूल पर बैठी तितली को लपक कर पकड़ लेता और दूसरे क्षण उंगलियों के बीच मसल डालता। अगर मसलता नहीं तो फड़फड़ाती तितली में पिन खोंस कर उसे अपनी कापी में टांक लेता।

उसके बारे में कहा जाता था कि अगर बोधराज को बिच्छू काट ले तो स्वयं बिच्छू मर जाता है, बोधराज का खून इतना कड़वा है कि उसे कुछ भी महसूस नहीं होता। सारा वक्त उसके हाथ में गुलेल रहती और उसका निशाना अचूक था। पक्षियों के घोंसलों पर तो उसकी विशेष कृपा रहती थी। पेड़ के नीचे खड़े होकर वह ऐसा निशाना बांधता कि दूसरे ही क्षण पक्षियों की चों-चों सुनाई देती और घोंसलों में से तिनके और थिगलियां टूट-टूट कर हवा में छितरने लगते, या वह झट से पेड़ पर चढ़ जाता और घोंसलों में से अण्डे निकाल लाता। जब तक वह घोंसलों को तोड़-फोड़ न डाले उसे चैन नहीं मिलता था।

उसे कभी भी कोई ऐसा खेल नहीं सूझता था जिसमें किसी को कष्ट नहीं पहुंचाया गया हो। बोधराज की मां भी उसे राक्षस कहा करती थी। बोधराज जेब में तरह-तरह की चीज़ें रखे घूमता, कभी मैना का बच्चा, या तरह-तरह के अण्डे या कांटेदार झाऊ चूहा। उससे सभी छात्र डरते थे। किसी के साथ झगड़ा हो जाता तो बोधराज सीधा उसकी छाती में टक्कर मारता, या उसके हाथ पर काट खाता। स्कूल के बाद हम लोग तो अपने-अपने घरों को चले जाते, मगर बोधराज न जाने कहां घूमता रहता।

कभी-कभी वह हमें तरह-तरह के

किस्से सुनाता। एक दिन कहने लगा, "हमारे घर में एक 'गोह' रहती है। जानते हो 'गोह' क्या होती है?"

"नहीं तो, क्या होती है 'गोह'?"

"गोह, सांप जैसा एक जानवर होता है, बालिश्त भर लम्बा, मगर उसके पैर होते हैं, आठ पंजे होते हैं। सांप के पैर नहीं होते।"

हम सिहर उठे।

"हमारे घर में सीढ़ियों के नीचे गोह रहती है," वह बोला, "जिस चीज़ को वह अपने पंजों से पकड़ ले वह उसे कभी भी नहीं छोड़ती, कुछ भी हो जाये नहीं छोड़ती।"

हम फिर सिहर उठे।

"चोर अपने पास गोह को रखते हैं। वे दीवार फांदने के लिए गोह का इस्तेमाल करते हैं। वे गोह की एक टांग में रस्सी बांध देते हैं। फिर जिस दीवार को फांदना हो, रस्सी को झुलाकर दीवार के ऊपर की ओर फेंकते हैं। दीवार के साथ लगते ही गोह अपने पंजों से दीवार को पकड़ लेती है। उसका पंजा इतना मज़बूत होता है कि फिर रस्सी को दस आदमी भी खींचे, तो गोह दीवार को नहीं छोड़ेगी। चोर उसी रस्सी के सहारे दीवार फांद जाते हैं।"

"फिर दीवार को तुम्हारी गोह छोड़ती कैसे है?" मैंने पूछा।

"ऊपर पहुंचकर चोर उसे थोड़ा-सा दूध पिलाते हैं, दूध पीते ही गोह के पंजे ढीले पड़ जाते हैं।" इसी तरह के किस्से बोधराज हमें सुनाता।

उन्हीं दिनों मेरे पिताजी की तरक्की हुई और हम लोग एक बड़े घर में जाकर रहने लगे। घर नहीं था, बंगला था, मगर पुराने ढंग का, और शहर के बाहर। फर्श इंटों के, छत ऊंची-ऊंची और ढलवां, कमरे बड़े-बड़े, लेकिन दीवार में लगता जैसे गारा भरा हुआ है। बाहर खुली ज़मीन थी और पेड़-पौधे थे। घर तो अच्छा था मगर बड़ा खाली-खाली सा लगता था और शहर से दूर होने के कारण मेरा दोस्त-यार भी यहां पर कोई नहीं था।

तभी वहां बोधराज आने लगा। शायद उसे मालूम हो गया था कि वहां शिकार अच्छा मिलेगा, क्योंकि उस पुराने घर में और घर के आंगन में अनेक पक्षियों के घोंसले थे, आसपास बंदर घूमते थे और घर के बाहर झाड़ियों में नेवलों के दो-एक बिल भी थे। घर के पिछले हिस्से में एक बड़ा कमरा था जिसमें मां ने फालतू सामान भरकर गोदाम-सा बना दिया था। यहां पर कबूतरों का डेरा था। दिन भर गुटरगू-गूटरगूं चलती

रहती। वहीं पर टूटे रोशनदान के पास एक मैना का भी घोंसला था। कमरे के फर्श पर पंख और टूटे अंडे और घोंसलों के तिनके बिखरे रहते।

बोधराज आता तो उसके साथ घूमने निकल जाता। एक बार वह झाऊ चूहा लाया, जिसका काला थूथना और कंटीले बाल देखते ही मैं डर गया था। मां को मेरा बोधराज के साथ घूमना अच्छा नहीं लगता था, मगर वह जानती थी कि मैं अकेला घर में पड़ा-पड़ा क्या करूंगा। मां भी उसे राक्षस कहती थी और उसे बहुत समझाती थी कि गरीब जानवरों को तंग नहीं किया करे।

एक दिन मां मुझसे बोली, "अगर तुम्हारे दोस्त को घोंसले तोड़ने में मज़ा आता है तो उससे कहो कि हमारे गोदाम में से घोंसले साफ कर दे। चिड़ियों ने कमरे को बहुत गंदा कर रखा है।"

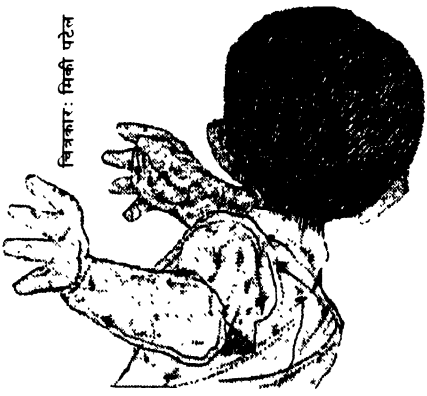

चित्रकार: मिकी पटेल

"मगर मां, तुम खुद ही तो कहती थी जो घोंसले तोड़ता है उसे पाप चढ़ता है!"

"मैं यह थोड़े ही कहती हूं कि पक्षियों को मारे। वह तो पक्षियों पर गुलेल चलाता है, उन्हें मारता है। घोंसला हटाना तो दूसरी बात है।"

चुनांचे, जब बोधराज घर पर आया तो मैं घर का चक्कर लगाकर उसे पिछवाड़े की ओर गोदाम में ले गया। गोदाम में ताला लगा था। हम ताला खोलकर अंदर गए। शाम हो रही थी और गोदाम के अंदर झुटपुटा-सा छाया था। कमरे में पहुंचे तो मुझे लगा जैसे हम किसी जानवर की मांद में पहुंच गए हों। बला की बू थी, और फर्श पर बिखरे हुए पंख और पक्षियों की बीट।

सच पूछो तो मैं डर गया। मैंने सोचा, यहां भी बोधराज अपना घिनौना शिकार खेलेगा, वह घोंसलों को तोड़-तोड़ कर गिराएगा, पक्षियों के घर नोचेगा, उनके अंडे तोड़ेगा, ऐसी सभी बातें करेगा जिनसे मेरा दिल दहलता था। न जाने मां ने क्यों कह दिया कि इसे गोदाम में ले जाओ और इससे कहो कि गोदाम में से घोंसले साफ कर दे। मुझे तो इसके साथ खेलने को भी मना करती थी और अब कह दिया कि घोंसले तोड़ो।

मैंने बोधराज की ओर देखा तो उसने गुलेल संभाल ली थी, और बड़े

चाव से छत के नीचे मैना के घोंसले की ओर देख रहा था। गोदाम की ढलवां छतें तिकोन-सा बनाती थीं, दो पल्ले ढलवां उतरते थे और नीचे एक लम्बा शहतीर कमरे के आरपार डाला गया था। इसी शहतीर पर टूटे हुए रोशनदान के पास ही एक बड़ा-सा घोंसला था, जिसमें से उभरे हुए तिनके, रुई के फाहे और लटकती थिगलियां हमें नज़र आ जाती थीं। यह मैना का घोंसला था। कबूतर अलग से, दूसरी ओर शहतीर पर गुटरगूं-गुटरगूं कर रहे थे और सारा वक्त शहतीर के ऊपर मटरगश्ती करते रहने में गुज़ारते थे।

"घोंसले में मैना के बच्चे हैं", बोधराज ने कहा और अपनी गुलेल से निशाना साध लिया।

तभी मुझे घोंसले में से छोटे-छोटे बच्चों की पीली-पीली नन्हीं चोंचें झांकती नज़र आईं।

"देखा?" बोधराज कह रहा था, "ये विलायती मैना है, इधर घोंसला नहीं बनाती। इनके मां-बाप ज़रूर अपने काफिले से बिछड़ गए होंगे और यहां आकर घोंसला बना लिया होगा।"

"इनके मां-बाप कहां हैं?" मैंने बोधराज से पूछा।

"चुग्गा लेने गए हैं। अभी आते होंगे," यह कहते हुए बोधराज ने अपनी गुलेल उठाई।

मैं उसे रोकना चाहता था कि घोंसले पर गुलेल नहीं चलाए पर तभी बोधराज की गुलेल से फर्रर्रर्र की आवाज़ निकली और इसके बाद ज़ोर की टन् की आवाज़ आई। गुलेल का कंकड़ घोंसले से न लगकर सीधा छत पर जा लगा था, जहां टीन के चादरें लगी थीं।

दोनों चोंच घोंसले के बीच कहीं गायब हो गयीं। और फिर सकता-सा आ गया। लग रहा था मानों मैना के बच्चे सहमकर चुप हो गए हों।

तभी बोधराज ने गुलेल से एक और वार किया। अबकी कंकड़ शहतीर से लगा।

बोधराज अपने अचूक निशाने पर बड़ा अकड़ा करता था। दो निशाने

चित्रकार: मिकी पटेल

चूक जाने पर वह बौखला उठा, अबकी बार वह थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ा रहा। जिस वक्त मैना के बच्चों ने अपनी चोंच फिर से उठाई और घोंसले के बाहर झांककर देखने लगे, उसी समय बोधराज ने तीसरा वार किया। अबकी कंकड़ घोंसले के किनारे पर लगा। तीन-चार तिनके और रुई के गाले उड़े और छितरा-छितरा कर फर्श की ओर उड़ने लगे। लेकिन घोंसला गिरा नहीं।

बोधराज ने फिर से गुलेल तान ली थी। तभी कमरे में एक भयानक-सा साया डोल गया। हमने नज़र उठाकर देखा। रोशनदान में से आने वाली रोशनी सहसा ढक गई थी। रोशनदान के सींखचे पर एक बड़ी-सी चील पर फैलाए बैठी थी। हम दोनों ठिठक कर उसकी ओर देखने लगे। रोशनदान में बैठी चील भयानक-सी लग रही थी। "यह चील का घोंसला होगा। चील अपने घोंसले में लौटी है।" मैंने ज़ोर से कहा।

"नहीं, चील का घोंसला यहां कैसे हो सकता है? चील अपना घोंसला पेड़ों पर बनाती है। यह मैना का घोंसला है।"

उसी वक्त घोंसले में से चों-चों की ऊंची आवाज़ आने लगी। घोंसले में बैठे मैना के बच्चे पर फड़फड़ाने और चिल्लाने लगे।

हम दोनों निश्चेष्ट से खड़े हो गए,

यह देखने के लिए कि चील अब क्या करेगी। हम दोनों टकटकी बांधे चील की ओर देखे जा रहे थे।

चील रोशनदान में से अंदर आ गई। उसने अपने पर समेट लिए थे और रोशनदान पर से उतरकर गोदाम के आर-पार लगे शहतीर पर उतर आई थी। वह अपना छोटा-सा सिर हिलाती, कभी दाएं और कभी बाएं देखने लगती। मैं चुप था, बोधराज भी चुप था, न जाने वह क्या सोच रहा था।

घोंसले में से बराबर चों-चों की आवाज़ आ रही थी, बल्कि पहले से कहीं ज़्यादा बढ़ गई थी। मैना के बच्चे बुरी तरह डर गए थे।

"यह यहां रोज़ आती होगी," बोधराज बोला।

अब मेरी समझ में आया कि क्यों फर्श पर जगह-जगह पंख और मांस के लोथड़े बिखरे पड़े रहते हैं। ज़रूर हर आए दिन चील घोंसले पर झपट्टा मारती होगी। मांस के टुकड़े और खून-सने पर इसी की चोंच से गिरते होंगे।

बोधराज अभी भी टकटकी बांधे चील की ओर देख रहा था।

अब चील धीरे-धीरे शहतीर पर चलती हुई घोंसले की ओर बढ़ने लगी थी और घोंसले में बैठे मैना के बच्चे पर फड़फड़ाने और चीखने लगे थे। जब से चील रोशनदान पर आकर बैठी थी, मैना के बच्चे चीखे जा रहे थे। बोधराज अब भी मूर्तिवत खड़ा चील की ओर ताके जा रहा था।

मैं घबरा उठा। मैं मन में बार-बार कहता, 'क्या फर्क पड़ता है अगर चील मैना के बच्चों को मार डालती है या बोधराज अपनी गुलेल से उन्हें मार डालता है? अगर चील नहीं आती तो इस वक्त तक बोधराज ने मैना का घोंसला नोच भी डाला होता।'

तभी बोधराज ने गुलेल उठाई और सीधा निशाना चील पर बांध दिया।

"चील को मत छेड़ो, वह तुम पर झपटेगी।" मैंने बोधराज से कहा।

मगर बोधराज ने नहीं सुना और गुलेल चला दी। चील को निशाना नहीं लगा। कंकड़ छत से टकरा कर नीचे गिर पड़ा और चील ने अपने बड़े-बड़े पंख फैलाए और नीचे सिर किए घूरने लगी।

"चलो यहां से निकल चलें," मैंने डरकर कहा।

"नहीं! हम चले गए तो चील बच्चों को खा जाएगी।"

उसके मुंह से यह वाक्य मुझे बड़ा अटपटा लगा। अभी कुछ देर पहले खुद तो घोंसला तोड़ने के लिए गुलेल उठा लाया था।

बोधराज ने एक और निशाना बांधा। मगर चील उस शहतीर पर से

उड़ी और गोदाम के अंदर पर फैलाए तैरती हुई-सी आधा चक्कर काटकर फिर से शहतीर पर जा बैठी। घोंसले में बैठे बच्चे बस लगातार चों-चों किए जा रहे थे।

बोधराज ने झट से गुलेल मुझे थमा दी और जेब में से पांच सात कंकड़ निकाल कर मेरी हथेली पर रखे। "तुम चील पर गुलेल चलाओ। चलाते जाओ, उसे बैठने नहीं देना," उसने कहा और स्वयं भागकर दीवार के साथ रखी मेज़ को घसीटकर फर्श के बीचों-बीच लाने लगा।

मैं गुलेल चलाना नहीं जानता था। दो-एक बार मैंने कंकड़ रखकर गुलेल चलाई लेकिन इस बीच चील गोदाम के दूसरे शहतीर पर जा बैठी थी।

बोधराज मेज़ को घसीटता हुआ ऐन मैना के घोंसले के नीचे ले आया। फिर उसने मेज़ पर एक टूटी हुई कुर्सी चढ़ा दी और फिर उछलकर मेज़ पर चढ़ गया और वहां से कुर्सी पर जा खड़ा हुआ। फिर बोधराज ने दोनों हाथ ऊपर को उठाए, जैसे-तैसे अपना संतुलन बनाए हुए उसने धीरे से दोनों हाथों से घोंसले को शहतीर पर से उठा लिया और धीरे-धीरे कुर्सी पर से उतर कर मेज़ पर आ गया और घोंसले को थामे-थामे छलांग लगा दी।

"चलो, बाहर निकल चलो," उसने कहा और दरवाज़े की ओर लपका।

गोदाम में से निकल कर हम गराज में आ गए। गराज में एक ही बड़ा दरवाज़ा था और दीवार में छोटा-सा एक झरोखा। यहां भी गराज के आरपार लकड़ी का एक शहतीर लगा था।

"यहां पर चील नहीं पहुंच सकती," बोधराज ने कहा और इधर-उधर देख कर बक्से पर चढ़ कर घोंसले को एक टूटे शहतीर के ऊपर रख दिया।

थोड़ी देर में घोंसले में बैठे मैना के बच्चे चुप हो गए। बोधराज बक्से पर चढ़कर मैना के घोंसले में झांकने लगा। मैंने सोचा, अभी हाथ बढ़ाकर दोनों बच्चों को एक साथ उठा लेगा, जैसा वह अक्सर किया करता था, फिर भले ही उन्हें जेब में डालकर घूमता फिरे। मगर उसने ऐसा कुछ नहीं किया। वह देर तक घोंसले के अंदर झांकता रहा और फिर बोला, "थोड़ा पानी लाओ, इन्हें प्यास लगी है। इनकी चोंच में बूंद-बूंद पानी डालेंगे।"

मैं बाहर गया और एक कटोरी में थोड़ा-सा पानी ले आया। दोनों नन्हें-नन्हें बच्चे चोंचें ऊपर को उठाए हांफ रहे थे। बोधराज ने उनकी चोंच में बूंद-बूंद पानी डाला और बच्चों को छूने से मुझे मना कर दिया, न ही स्वयं उन्हें छुआ।

"इन बच्चों के मां-बाप यहां कैसे पहुंचेंगे?" मैंने पूछा।

"वे इस झरोखे में से आ जाएंगे।

वे अपने-आप इन्हें ढूंढ निकालेंगे।''

हम देर तक गराज में बैठे रहे। बोधराज देर तक मनसूबे बनाता रहा कि वह कैसे रोशनदान को बंद कर देगा, ताकि चील कभी गोदाम के अंदर न आ सके। उस शाम वह चील की ही बातें करता रहा।

दूसरे दिन जब बोधराज मेरे घर आया तो न तो उसके हाथ में गुलेल थी और न जेब में कंकड़, बल्कि जेब में बहुत-सा चुग्गा भरकर लाया था और हम दोनों देर तक मैना के बच्चों को चुग्गा डालते और उनके करतब देखते रहे थे।

भीष्म साहनी: (1915–2003) रावलपिंडी में पैदा हुए। पत्रकारिता, अध्यापन, नाटक मंडली में काम के साथ-साथ साहित्य लेखन भी किया। इप्टा, प्रगतिशील लेखक संघ, अफ्रो-एशियाई लेखक संघ जैसे संगठनों को मज़बूती प्रदान की।

उनकी प्रमुख रचनाएं भाग्यरेखा, कुंतो, भटकती राख, तमस, हानूश, कबिरा खड़ा बाज़ार में आदि हैं। भीष्म साहनी का हाल में निधन हुआ है।

यह कहानी नेशनल बुक ट्रस्ट, द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'तेरह अनुपम कहानियां' से साभार।

चित्रकार: मिकी पटेल।